



प्रकाशन हेतु अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

रिट याचिका सेवा सं 8502/2022

आदेश सुरक्षित किया गया : 11.07.2025

आदेश पारित किया गया : 23.07.2025

सुभाष सिंह ठाकुर, आयु लगभग 55 वर्ष, पिता श्री अनिरुद्ध सिंह ठाकुर, निवासी कोनी तहसील, जिला बिलासपुर 495009 (छ.ग.)..

---याचिकाकर्ता

बनाम

1-भारत संघ, सचिव के द्वारा, उच्च शिक्षा विभाग, शिक्षा मंत्रालय 127-सी, शास्त्री भवन, नई दिल्ली 110001

2- गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, कुलपति के द्वारा, कोनी, बिलासपुर 495009 (छ.ग.)

---उत्तरवादी

(वाद कारण प्रकरण सूचना प्रणाली से लिया गया)

याचिकाकर्ता हेतु : श्री गौतम खेत्रपाल, अधिवक्ता

उत्तरवादी संख्या 2 हेतु : श्री आशीष श्रीवास्तव, वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री आशुतोष श्रीवास्तव और श्री उदित खत्री, अधिवक्ता

माननीय श्रीमती. रजनी दुबे, न्यायाधीश

माननीय श्री अमितेन्द्र किशोर प्रसाद, न्यायाधीश

सीएवी आदेश



अमितेन्द्र किशोर प्रसाद, न्यायाधीश के अनुसार,

1. याचिकाकर्ता द्वारा दायर याचिका से ज्ञात होता है कि उत्तरवादी संख्या 2 गुरु घासीदास केंद्रीय विश्वविद्यालय (इसके बाद 'जीजीयू') याचिकाकर्ता के प्रकरण पर विचार नहीं कर रहा है, जबकि यह कह रहा है कि केंद्रीय विश्वविद्यालय अधिनियम, 2009 (संक्षेप में अधिनियम, 2009) की धारा 4 (डी) के अनुसार, याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल नहीं किया जा सकता है, इस प्रकार याचिकाकर्ता निम्नलिखित अनुतोष की प्रार्थना करते हुए अधिनियम, 2009 की धारा 4 (डी) को भी चुनौती दे रहा है: -

"क) केंद्रीय विश्वविद्यालय अधिनियम, 2009 की धारा 4 (घ) को निरस्त करने के लिए, उत्प्रेषण रिट की प्रकृति में, एक उपयुक्त रिट, आदेश या निर्देश जारी करने ;या

उत्तरवादीगण को बी.एच.यू. (गैर-शिक्षण कर्मचारी) के अध्यादेश 89 के आलोक में याचिकाकर्ता के प्रकरण पर विचार करने का आदेश दें और यदि केंद्रीय विश्वविद्यालय अधिनियम, 2009 के अधिनियमन से पहले पूर्ववर्ती जीजीयू के तहत कार्य करने से बर्खास्त किए गए किसी कर्मचारी को सक्षम न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया जाता है, तो उसे एक सक्षम समिति द्वारा जीजीयू में बहाल करने पर विचार किया जाएगा:

ख) उत्तरवादी संख्या 2 को निर्देश देते हुए कि वह याचिकाकर्ता को बहाल करने के उद्देश्य से विचार करे, क्योंकि उसे इस माननीय न्यायालय द्वारा सभी दाण्डिक आरोपों से मुक्त कर दिया गया है, एक उचित रिट, आदेश या निर्देश जारी करना, जो कि परमादेश की प्रकृति का हो;

ग) याचिकाकर्ता को लागत का भुगतान करने सहित मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उपयुक्त और न्यायसंगत समझे जाने वाले अन्य आदेश पारित करना।"

2. प्रकरण के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता पूर्व गुरु घासीदास विश्वविद्यालय का कर्मचारी था और 13.05.1996 को उसकी नियुक्ति अवर श्रेणी लिपिक के पद पर हुई थी। याचिकाकर्ता के विरुद्ध एक दाण्डिक प्रकरण दर्ज किया गया था जिसमें आरोप लगाया गया था कि 03.07.2005 को रात लगभग 9:30 बजे याचिकाकर्ता 9-10 अन्य अज्ञात व्यक्तियों के साथ परिवादीगण के घर में घुस आया और उनके साथ मारपीट की, जिससे परिवादीगण के शरीर पर चोटें आईं और उन्होंने एक परिवादी का मंगलसूत्र भी लूट लिया। प्रथम सूचना रिपोर्ट के आधार पर दाण्डिक अभियोजन के कारण, सबसे पहले दिनांक 02.01.2007 के आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता को तत्कालीन गुरु घासीदास विश्वविद्यालय द्वारा निलंबित कर दिया गया था और उसके बाद, जब याचिकाकर्ता को दिनांक 19.02.2007 के निर्णय द्वारा,



सत्र विचारण क्रमांक 111/2006 में 8 वें अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश (एफटीसी), बिलासपुर द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 (संक्षेप में, 'आईपीसी') की धारा 147, 148, 450, 307/149 और 323/149 (2 मामलों) के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया गया था।

3. याचिकाकर्ता को दिनांक 23.11.2007 के आदेश द्वारा विश्वविद्यालय परिनियम के नियम 31, सहपठित छत्तीसगढ़ सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 1966 (संक्षेप में 'नियम, 1966') के अंतर्गत सेवा से हटा दिया गया था। अपनी दोषसिद्धि के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय में दायित्व अपील संख्या 159/2007 के रूप में अपील दायर की है। इस बीच, केंद्र सरकार द्वारा गुरु घासीदास विश्वविद्यालय को गुरु घासीदास केंद्रीय विश्वविद्यालय घोषित कर दिया गया और तत्कालीन राज्य विश्वविद्यालय का अस्तित्व समाप्त हो गया। केंद्रीय विश्वविद्यालय बनने के बाद, गुरु घासीदास केंद्रीय विश्वविद्यालय केंद्रीय विश्वविद्यालय अधिनियम, 2009 के अधीन आ गया। कर्मचारियों की सेवाएँ और अन्य लाभ केंद्रीय विश्वविद्यालय अधिनियम, 2009 के अंतर्गत शासित होते थे।

4. अधिनियम, 2009 की धारा 4(घ) गुरु घासीदास विश्वविद्यालय के पूर्व कर्मचारियों के नियोजन से संबंधित है। अधिनियम, 2009 की धारा 4 को आसान संदर्भ के लिए नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

4. विश्वविद्यालयों की स्थापना का प्रभाव। इस अधिनियम के प्रारंभ की दिनांक से,-

(क) किसी संविदा या अन्य लिखत में गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, डॉक्टर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय के प्रति कोई संदर्भ, इस अधिनियम के अधीन स्थापित क्रमशः गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, डॉक्टर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय और हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय के प्रति संदर्भ माना जाएगा;

(बी) गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, डॉक्टर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय और हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय की या उनसे संबंधित सभी चल और अचल संपत्तियाँ, इस अधिनियम के तहत स्थापित, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, डॉक्टर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय या हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, जैसा भी मामला हो, में निहित होंगी;

(सी) इस अधिनियम के तहत स्थापित गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, डॉक्टर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय और हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय के सभी अधिकार और दायित्व क्रमशः



गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, डॉक्टर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय और हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय को हस्तांतरित कर दिए जाएंगे और ये उनके अधिकार और दायित्व होंगे;

(घ) इस अधिनियम के लागू होने से ठीक पहले गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, डॉक्टर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय और हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय द्वारा नियोजित प्रत्येक व्यक्ति, इस अधिनियम के अधीन स्थापित क्रमशः गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, डॉक्टर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय और हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय में उसी कार्यकाल, उसी पारिश्रमिक और उन्हीं शर्तों और पेंशन, छुट्टी, ग्रेच्युटी, भविष्य निधि और अन्य मामलों के बारे में उन्हीं अधिकारों और विशेषाधिकारों के साथ अपना पद या सेवा धारण करेगा जैसा कि वह इस अधिनियम के लागू न होने पर धारण करता और तब तक ऐसा करता रहेगा जब तक कि उसका रोजगार समाप्त नहीं कर दिया जाता या जब तक कि ऐसे कार्यकाल, पारिश्रमिक और शर्तों को परिनियमों द्वारा विधिवत रूप से परिवर्तित नहीं कर दिया जाता है;"

5. यह विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि इस अधिनियम के लागू होने के पूर्व उक्त विश्वविद्यालय में कार्यरत कर्मचारी, इस अधिनियम के अधीन स्थापित गुरु घासीदास विश्वविद्यालय में उसी अवधि तक, उसी पारिश्रमिक और उन्हीं शर्तों और नियमों पर तथा पेंशन, अवकाश नकदीकरण, ग्रेच्युटी, भविष्य निधि और अन्य मामलों में उन्हीं अधिकारों और विशेषाधिकारों के साथ अपना पद या सेवा धारण करेंगे, जैसा कि वे इस अधिनियम के लागू न होने पर धारण करते और तब तक बने रहेंगे, जब तक उनका नियोजन समाप्त नहीं कर दिया जाता है।

6. यह अधिनियम 20.03.2009 को लागू हुआ। तत्पश्चात, याचिकाकर्ता द्वारा अपनी दोषसिद्धि के विरुद्ध दायर आपराधिक अपील पर इस न्यायालय द्वारा दाण्डिक अपील संख्या 159/2007 में दिनांक 04.01.2021 के निर्णय द्वारा निर्णय दिया गया। उक्त दाण्डिक अपील में, भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 325/149, 323/149 (दो बार) के अंतर्गत दंडनीय अपराध के लिए याचिकाकर्ता की दोषसिद्धि को शमनीय माना गया है क्योंकि परिवादी और अभियुक्तों ने अपने विवाद का सौहार्दपूर्ण ढंग से निराकरण कर लिया था। हालाँकि, जहाँ तक भारतीय दंड संहिता की धारा 450 का प्रश्न है, इसका शमनीय नहीं किया जा सका क्योंकि यह शमनीय अपराध नहीं था। दाण्डिक अपील में, याचिकाकर्ता और अन्य अपीलकर्ताओं ने तर्क दिया है कि वे लगभग 8 महीने की दंड भुगत चुके हैं, उनका कोई



अन्य आपराधिक इतिहास नहीं है, पक्षों के बीच विवाद पहले ही सुलझ चुका है और इसलिए, उनकी दंड के हिस्से पर आपराधिक इतिहास माना जा सकता है, पक्षों के बीच विवाद पहले ही सुलझ चुका है और इसलिए, उनकी दंड के हिस्से पर विचार किया जा सकता है और याचिकाकर्ता, अर्थात् सुभाष सिंह को उनके द्वारा पहले ही बिताई गई अवधि के लिए दंड पारित किया जा सकता है और दंड का उनके रोजगार पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए क्योंकि वह एक शासकिय कर्मचारी थे। उपरोक्त तर्क पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय पारित किया है:-

"10. आईपीसी की धारा 450 के तहत अपराध के संबंध में, यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ताओं को लगभग 8 महीने की सजा हो चुकी है, उनका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और वे पिछले 13-14 वर्षों से मुकदमे का सामना कर रहे हैं। दोनों पक्षों ने सौहार्दपूर्ण ढंग से अपने विवाद को सुलझा लिया है और अब उनके बीच कोई शिकायत नहीं है। इसलिए, यह प्रार्थना की जाती है कि आईपीसी की धारा 450 के तहत अपराध के लिए अपीलकर्ताओं को उनके द्वारा पहले से बिताई गई अवधि के लिए दंड दी जाए। अपीलकर्ता संख्या 2, सुभाष सिंह (आपराधिक अपील संख्या 159/2007) के संबंध में, यह भी प्रार्थना की जाती है कि अपीलकर्ता सुभाष सिंह सरकारी कर्मचारी हैं और चूंकि विवाद पहले ही पक्षों के बीच सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लिया गया है और अब उनके बीच कोई शिकायत नहीं है, इसलिए अपीलकर्ता सुभाष सिंह को उनके द्वारा पहले से बिताई गई अवधि के लिए सजा दी जाए और उन्हें दंड पारित करते समय यह देखा जाए कि आईपीसी की धारा 450 के तहत उनकी दोषसिद्धि से सरकार के अधीन उनके रोजगार पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

11. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, जिसमें यह तथ्य भी शामिल है कि अपीलकर्ता लगभग 8 महीने की सजा काट चुके हैं, उनका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है, विवाद पक्षों के बीच सौहार्दपूर्ण ढंग से पहले ही निराकरण किया जा चुका है, मेरा मानना है कि यदि अपीलकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता की धारा 450 के तहत अपराध के लिए उनके द्वारा पहले ही बिताई गई अवधि के साथ दंड पारित किया जाता है, तो न्याय की पूर्ति होगी। तदनुसार आदेश दिया जाता है। 1,000/- रुपये के जुर्माने की सजा की पुष्टि की जाती है। यह भी आदेश दिया जाता है कि अपीलकर्ता सुभाष सिंह की सरकारी नौकरी और उनकी नौकरी से संबंधित भविष्य की संभावनाओं पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।



12. परिणामस्वरूप, दोनों अपीलों को ऊपर बताई गई सीमा तक आंशिक रूप से स्वीकार किया जाता है।"

7. उपरोक्त निर्णय के पारित होने के बाद, याचिकाकर्ता, जिसे उसकी दोषसिद्धि के आधार पर 23.11.2007 को सेवा से हटा दिया गया था, ने उत्तरवादी संख्या 2 के समक्ष 15.01.2021 और 11.06.2021 को निर्णय की प्रति के साथ एक आवेदन दायर किया है जिसमें कहा गया है कि उसकी सेवा की बहाली के लिए विचार किया जा सकता है और इस मामले को गुरु घासीदास केंद्रीय विश्वविद्यालय द्वारा 02.09.2022 को आयोजित कार्यकारी परिषद की बैठक में ध्यान में रखा गया था और याचिकाकर्ता के प्रकरण पर मद संख्या 22 के तहत विचार करते हुए, यह हल किया गया था कि तत्कालीन राज्य विश्वविद्यालय द्वारा जारी आदेश दिनांक 23.11.2007 के तहत श्री सुभाष सिंह ठाकुर की समाप्ति पर पुनर्विचार नहीं किया जा सकता है क्योंकि उनकी सेवा अधिनियम, 2009 की धारा 4(डी) के तहत संरक्षित नहीं है। तदनुसार, दिनांक 15.09.2022 के संचार में, याचिकाकर्ता को अधिनियम, 2009 की धारा 4(डी) के प्रावधानों का उल्लेख देते हुए कार्यकारी परिषद की बैठक में लिए गए निर्णय के बारे में सूचित किया गया था। दिनांक 15.09.2022 के संचार का सार इस प्रकार है:-

"कार्यकारी परिषद ने 15-03-2022 को हुई अपनी बैठक में समिति की अनुशंसा पर विस्तार से चर्चा और विचार-विमर्श किया और साथ ही मामले में ली गई विधिक राय पर भी विचार-विमर्श किया। यह भी नोट किया गया कि श्री सुभाष सिंह ठाकुर की सेवाएं तत्कालीन राज्य विश्वविद्यालय द्वारा 23-11-2007 को समाप्त कर दी गई थीं। संकल्प लिया गया कि तत्कालीन राज्य विश्वविद्यालय द्वारा जारी दिनांक 23-11-2007 के आदेश द्वारा श्री सुभाष सिंह ठाकुर की समाप्ति पर पुनर्विचार नहीं किया जा सकता है क्योंकि उनकी सेवाएं केंद्रीय विश्वविद्यालय अधिनियम 2009 की धारा 4(डी) के तहत संरक्षित नहीं हैं। इसके अलावा यह भी संकल्प लिया गया कि श्री सुभाष सिंह ठाकुर (समाप्त) द्वारा दिनांक 15-01-2021 और 11-06-2021 के पत्रों में किए गए अनुरोध को अस्वीकार कर दिया जाए।"

8. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री गौतम खेत्रपाल ने प्रस्तुत किया कि अधिनियम, 2009 की धारा 4(घ) का सहारा लेते हुए, दिनांक 15.09.2022 के पत्र द्वारा याचिकाकर्ता को जारी किया गया पत्र विधि के अनुरूप नहीं है। 2009 के अधिनियम की धारा 4(घ) के



अंतर्गत प्रावधान "यूबी जस इबी रेमिडियम" के सिद्धांत का उल्लंघन है और यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत उसके अधिकार का स्पष्ट उल्लंघन है क्योंकि दाण्डिक अपील में, इस न्यायालय ने टिप्पणी की है कि उसके रोजगार पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा, इसलिए उत्तरवादी संख्या 2 ने याचिकाकर्ता को उसकी बहाली से वंचित करके और उसे सभी सेवा लाभ प्रदान करके अवैधता की है। उपरोक्त प्रावधान प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हैं क्योंकि ये एक कर्मचारी के अधिकारों को अवैध और मनमाने तरीके से छीनते हैं। उन्होंने आगे तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता पूर्ववर्ती विश्वविद्यालय का कर्मचारी था और इस प्रकार, उस निर्णय के पारित होने के बाद जिसमें उसके भविष्य के अधिकारों की रक्षा की गई थी, याचिकाकर्ता को अधिनियम, 2009 की धारा 4(डी) का सहारा लेकर प्रताड़ित नहीं किया जा सकता है, जो स्वयं प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के साथ-साथ भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का भी उल्लंघन है। यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता की सेवाएँ छत्तीसगढ़ सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) नियम, 1966 द्वारा शासित थीं और इस प्रकार, अधिनियम, 2009 के बाद के अधिनियमन और धारा 4(घ) का सहारा लेना लागू नहीं होगा क्योंकि धारा 4(ग) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि गुरु घासीदास विश्वविद्यालय के सभी अधिकार और दायित्व, अधिनियम 2009 के तहत स्थापित गुरु घासीदास केंद्रीय विश्वविद्यालय को हस्तांतरित हो जाएँगे और उसके अधिकार और दायित्व होंगे। चूँकि उपरोक्त धारा 4(ग) दायित्व संबंधी भाग से संबंधित है, अतः याचिकाकर्ता को अधिनियम 2009 की धारा 4(ग) के तहत अधिकार प्राप्त है, तथापि, केवल धारा 4(घ) के आधार पर, जो संवैधानिक आदेश के विरुद्ध है, याचिकाकर्ता को उसकी सेवा संबंधी लाभ प्राप्त करने और उसकी बहाली के उसके बहुमूल्य अधिकार से वंचित किया जा रहा है।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने जे.एन. त्रिपाठी बनाम कुलपति, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, 1995 एससीसी ऑनलाइन एलएल 839 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों पर भरोसा करते हुए तर्क दिया है कि अधिनियम, 2009 की धारा 4(डी) दमनकारी, असंवैधानिक और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के खिलाफ है, इसलिए इसे रद्द किया जाना आवश्यक है और इसके अलावा, याचिकाकर्ता को बहाल करने के लिए उत्तरवादी सं 2 को निर्देश जारी किए जाने की आवश्यकता है, जबकि परमादेश के रूप में उचित रिट जारी की जाए जिसमें कहा गया हो कि याचिकाकर्ता को इस न्यायालय द्वारा सभी आपराधिक आरोपों से मुक्त कर दिया गया है।



10. दूसरी ओर, उत्तरवादी संख्या 2 के अधिवक्ता श्री आशुतोष श्रीवास्तव और श्री उदित खत्री की सहायता से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आशीष श्रीवास्तव ने लिखित रूप से याचिका दायर कर याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत अभिवचनों का खंडन करते हुए तर्क दिया है कि इस न्यायालय द्वारा दण्डिक अपील संख्या 159/2007 में याचिकाकर्ता को कभी भी दोषमुक्त नहीं किया गया था, बल्कि इस न्यायालय द्वारा आईपीसी की धारा 450 के तहत याचिकाकर्ता की दोषसिद्धि की पुष्टि की गई थी। हालाँकि, दंड के भाग को ध्यान में रखा गया है और इस तथ्य को देखते हुए कि याचिकाकर्ता और अन्य अभियुक्तों के बीच परिवादीगण के साथ समझौता हो गया है, इसलिए शमनीय अपराधों को शमन कर दिया गया है और उसे आईपीसी की धारा 450 में पहले ही बिताई गई अवधि के लिए दंड पारित किया गया है। इस प्रकार, याचिकाकर्ता का यह दावा कि उसे सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया है, अभिलेख के आधार पर गलत है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि याचिकाकर्ता को 23.11.2007 को ही हटा दिया गया था और अधिनियम, 2009 की धारा 4(घ) के अनुसार, याचिकाकर्ता उस समय सेवा में नहीं था जब अधिनियम लागू हुआ और इस प्रकार, अधिनियम, 2009 का सहारा लेते हुए, याचिकाकर्ता को पुनर्स्थापना और अन्य सेवा लाभों से वंचित करना उचित था। यह तर्क दिया गया है कि धारा 4(घ) के प्रावधान असंवैधानिक, दमनकारी और प्राकृतिक न्याय के विपरीत हैं, क्योंकि जिन कारणों से याचिकाकर्ता को अधिनियम, 2009 की धारा 4(घ) का सहारा लेकर बहाल नहीं किया जा सकता है, याचिकाकर्ता यह नहीं कह सकता कि अधिनियम दमनकारी और असंवैधानिक है। यह भी तर्क दिया गया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार यह माना है कि किसी कर्मचारी के लिए गैर-लाभकारी होने के आधार पर अधिनियम को दमनकारी (अधिकार से बाहर) नहीं ठहराया जा सकता। ये अधिनियम और अधिनियम बड़ी संख्या में कर्मचारियों द्वारा बनाए जाते हैं, न कि किसी एक व्यक्ति के लिए। यदि कोई व्यक्ति किसी अधिनियम से व्यथित है, तो इसे असंवैधानिक, दमनकारी और संवैधानिक ढाँचे के विरुद्ध नहीं कहा जा सकता है। किसी भी विधि को बार-बार असंवैधानिक घोषित करने के लिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि उचित आधार होना चाहिए, जो इस मामले में अनुपस्थित हैं। अतः, मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान याचिका खारिज किए जाने योग्य है।



11. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और उनके ऊपर दिए गए प्रतिद्वंदी निवेदनों पर विचार किया है तथा अभिलेखों का भी अत्यंत सावधानी से अध्ययन किया है।

12. इस न्यायालय के समक्ष मुख्य विवादक निम्नलिखित हैं:--

- क्या याचिकाकर्ता अधिनियम, 2009 की धारा 4(घ) के प्रावधानों के तहत बहाली का हकदार है, भले ही उसे अधिनियम के लागू होने से पहले ही सेवा से हटा दिया गया हो।
- क्या अधिनियम, 2009 की धारा 4(घ) मनमानी या मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर किसी असंवैधानिकता से ग्रस्त है।

13. यह स्वीकार किया जाता है कि याचिकाकर्ता जीजीयू का एक पूर्व कर्मचारी था, जिसे 23.11.2007 को सेवा से हटा दिया गया था, जब उसके खिलाफ आईपीसी की धारा 147, 148, 450, 325/149 और 323/149 (दो मामलों) के तहत एक दाण्डिक मामला लंबित था। उपरोक्त अपराधों में, उसे अधिकतम 7 वर्ष का दंड पारित किया गया था और 1,000 रुपये का जुर्माना भी लगाया गया था। जब इस निर्णय को इस न्यायालय में चुनौती दी गई, तो आईपीसी की धारा 307/149 के तहत दंडनीय अपराध साबित नहीं हुआ क्योंकि घायलों को साधारण चोटें आई थीं। कोई गंभीर चोटें नहीं पाई गई; इसलिए, आईपीसी की धारा 307/149 को आईपीसी की धारा 325/149 में बदल दिया गया। भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148 और 323 (पठित 149) के अंतर्गत अन्य अपराधों का पक्षकारों के बीच सौहार्दपूर्ण ढंग से निपटारा हो गया और इस प्रकार उन्हें शमनीय बना दिया गया। हालाँकि, भारतीय दंड संहिता की धारा 450 सिद्ध पाई गई। भारतीय दंड संहिता की धारा 450 के अंतर्गत दंडनीय अपराध के लिए याचिकाकर्ता को 07 वर्ष दंड पारित किया गया। हालाँकि, इस न्यायालय ने मामले के संपूर्ण पहलू पर विचार किया, जिसमें न्यायालय के बाहर पक्षकारों के बीच मामले का सौहार्दपूर्ण समाधान भी शामिल था और तदनुसार, भारतीय दंड संहिता की धारा 450 के अंतर्गत याचिकाकर्ता को दोषी ठहराते हुए, सजा के भाग पर विचार किया गया और तदनुसार, याचिकाकर्ता द्वारा की गई प्रार्थना पर दंड को पहले से ही बिताई गई अवधि, अर्थात् लगभग 08 महीने तक कम कर दिया गया। भारतीय दंड संहिता की धारा 450 के अंतर्गत याचिकाकर्ता को दोषी ठहराते हुए और उसके द्वारा पहले से ही बिताई गई अवधि तक की दंड पारित करते हुये, यह आदेश दिया गया कि याचिकाकर्ता सुभाष सिंह की सरकारी नौकरी और उसकी



नौकरी से संबंधित भविष्य की संभावनाओं पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। उक्त आदेश के आधार पर याचिकाकर्ता को दिनांक 23.11.2007 को ही सेवा से हटा दिया गया था। सेवा में पुनः बहाली हेतु आवेदन दिनांक 15.01.2021 एवं 11.06.2021 को प्रस्तुत किया गया।

14. यह भी एक स्वीकृत मामला है कि वर्ष 2009 में, अधिनियम, 2009 के आधार पर, जो 15.01.2009 को लागू हुआ, पूर्ववर्ती विश्वविद्यालय के कर्मचारी जो उक्त विश्वविद्यालय में कार्यरत थे और सेवा में बने रहे, उन्हें उनके कार्यालय में उनके पदों के अनुसार और उसी कार्यकाल के लिए, उसी पारिश्रमिक और उन्हीं नियमों और शर्तों पर और पेंशन, अवकाश नकदीकरण, ग्रेच्युटी और भविष्य निधि के समान अधिकारों और विशेषाधिकारों के साथ सेवा में लिया गया, जो अधिनियम, 2009 के लागू होने से पहले उनके लिए उपलब्ध थे। हालाँकि, अधिनियम, 2009 की धारा 4(डी) में एक विशिष्ट खंड शामिल किया गया था, जिसमें कहा गया था कि वे तब तक ऐसा करना जारी रखेंगे जब तक कि "उनका रोजगार समाप्त नहीं हो जाता है।" इस खंड का अर्थ है कि केवल तभी जब कर्मचारी पहले उक्त विश्वविद्यालय में निरंतर सेवा में थे, वे नए केंद्रीय विश्वविद्यालय के साथ बने रह सकते थे। वर्तमान मामले में, चूंकि याचिकाकर्ता को 23.11.2007 को ही हटा दिया गया था, इसलिए प्राधिकारियों ने याचिकाकर्ता को अधिनियम 2000 की धारा 4(डी) के तहत सही जानकारी दी है।

15. याचिकाकर्ता को सेवा में बनाए नहीं रखा जा सकता और तदनुसार, कार्यकारी परिषद की बैठक में उसकी बहाली को अस्वीकार कर दिया गया है, और इसके परिणाम की सूचना याचिकाकर्ता को एक अलग ज्ञापन द्वारा पहले ही दे दी गई है। याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश का हवाला देते हुए, इस न्यायालय को यह विश्वास दिलाने का हर संभव प्रयास किया कि याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल किया जाना आवश्यक है। हालाँकि, जब याचिकाकर्ता इस न्यायालय को आश्वस्त नहीं कर सका, तो उसने दूसरी प्रार्थना की कि अधिनियम, 2009 की धारा 4(घ) के अंतर्गत सम्मिलित प्रावधान स्वयं असंवैधानिक हैं और इसलिए, अधिनियम, 2009 की धारा 4(घ) को निरस्त करके इसे दमनकारी और असंवैधानिक ठहराया जाना आवश्यक है।

16. मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, हमें डर है कि याचिकाकर्ता इसे गंभीरता से चुनौती नहीं दे रहा है क्योंकि पूरी याचिका में और साथ ही याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए तर्कों के दौरान, कहीं भी इस न्यायालय



के संज्ञान में ऐसा कुछ नहीं लाया गया है जिससे अधिनियम, 2009 की धारा 4(डी) में निहित प्रावधानों को याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकारों का दमनकारी, असंवैधानिक या उल्लंघन करने वाला माना जा सके।

17. बल्कि, ऐसा लगता है कि याचिकाकर्ता ने अपने मामले को स्थापित करने के लिए, सामान्य रूप से अधिनियम, 2009 की वैधता और औचित्य को चुनौती दी है और साथ ही अपनी बहाली की मांग की है।

18. अधिनियम, 2009 की धारा 4(घ) में यह प्रावधान है कि "इस अधिनियम के लागू होने से ठीक पहले विश्वविद्यालय के अधीन कोई भी पद धारण करने वाला प्रत्येक कर्मचारी उसी कार्यकाल तक अपना पद या सेवा धारण करेगा और तब तक ऐसा करना जारी रखेगा जब तक कि उसका रोजगार समाप्त नहीं कर दिया जाता है।"

19. धारा 4(घ) का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि विश्वविद्यालय के मौजूदा कर्मचारियों को, इसके केंद्रीय विश्वविद्यालय में परिवर्तित होने पर, सेवा शर्तों, अधिकारों या विशेषाधिकारों का नुकसान न हो। हालाँकि, यह सुरक्षा स्पष्ट रूप से इस शर्त पर है कि कर्मचारी 15.01.2009 को सेवा में हो। याचिकाकर्ता को 23.11.2007 को सेवा से हटा दिया गया था, इसलिए वह अधिनियम के लागू होने की तिथि पर इस प्रावधान के संरक्षण के दायरे से बाहर था। इस प्रावधान की व्याख्या उन लोगों को पूर्वव्यापी बहाली लाभ प्रदान करने के लिए नहीं की जा सकती जो अधिनियम के लागू होने के समय नौकरी में नहीं थे।

20. यह सर्वविदित है कि किसी वैधानिक प्रावधान को केवल कठिनाई के आधार पर असंवैधानिक घोषित नहीं किया जा सकता है। याचिकाकर्ता ने यह प्रदर्शित नहीं किया है कि धारा 4(डी) अनुच्छेद 14 या 21 सहित किसी भी संवैधानिक प्रावधान का उल्लंघन कैसे करती है। **मध्य प्रदेश राज्य बनाम राकेश कोहली और अन्य, (2012) 6 एससीसी 312** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि किसी विधि को केवल कठिनाई या अनुचितता के आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है, जब तक कि इसे मनमाना, भेदभावपूर्ण या संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करने वाला नहीं दिखाया जाता है, जैसा कि निम्नलिखित अवलोकन करके दिखाया गया है: -

"15. हमारी राय में, उच्च न्यायालय ने 1899 के अधिनियम की अनुसूची 1-ए के अनुच्छेद 45 के खंड (डी) को, जिसे मध्य प्रदेश 2002 अधिनियम द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन बताया गया था, घोषित करने में स्पष्ट रूप से गलती की थी। उच्च न्यायालय के इस तर्क को स्वीकार करना बहुत



कठिन है कि प्रावधान वर्गीकरण की कसौटी पर खरा उतर सकता है लेकिन यह संविधान के अनुच्छेद 14 के दूसरे अंग की आवश्यकता को पूरा नहीं करेगा जो मनमानी, अनुचित और तर्कहीनता को बहिष्कृत करता है। उच्च न्यायालय संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा अधिनियमित किसी विधि की संवैधानिक वैधता पर विचार करते समय सुपरिभाषित सीमाओं को ध्यान में रखने में विफल रहा।

16. संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा पारित किसी भी विधि को हल्के में असंवैधानिक घोषित नहीं किया जा सकता। न्यायालय को बिना किसी संदेह के यह निष्कर्ष निकालने में सक्षम होना चाहिए कि संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन इतना स्पष्ट था कि चुनौती दी गई विधायी व्यवस्था टिक नहीं सकती। संवैधानिक प्रावधानों के घोर उल्लंघन के बिना, संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा बनाया गया कानून गलत घोषित नहीं किया जा सकता है।

17. इस न्यायालय ने बार-बार कहा है कि किसी विधायी अधिनियम को न्यायालय केवल दो आधारों पर रद्द कर सकता है, अर्थात् (i), कि उपयुक्त विधानमंडल के पास कानून बनाने का अधिकार नहीं है और (ii), कि वह संविधान के भाग III या किसी अन्य संवैधानिक प्रावधान में उल्लिखित किसी भी मौलिक अधिकार को छीनता या कम नहीं करता। मैकडॉवेल एंड कंपनी (1996) 3 एससीसी 709 में, अनुच्छेद 14 पर आधारित एक अधिनियम को चुनौती पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने रिपोर्ट के कंडिका 43 (पृष्ठ 737 पर) में निम्नलिखित कहा: -

....संसद या विधायिका द्वारा बनाए गए कानून को अदालतों द्वारा दो आधारों और केवल दो आधारों पर रद्द किया जा सकता है, अर्थात्, (1) विधायी क्षमता की कमी और (2) संविधान के भाग III या किसी अन्य संवैधानिक प्रावधान में गारंटीकृत किसी भी मौलिक अधिकार का उल्लंघन। कोई तीसरा आधार नहीं है..... यदि किसी अधिनियम को अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के रूप में चुनौती दी जाती है, तो इसे केवल तभी रद्द किया जा सकता है जब यह पाया जाता है कि यह उसमें निहित समानता खंड / समान संरक्षण खंड का उल्लंघन करता है। इसी तरह, यदि किसी अधिनियम को अनुच्छेद 19 (1) के खंड (ए) से (जी) द्वारा गारंटीकृत किसी भी मौलिक अधिकार के उल्लंघन के रूप में चुनौती दी जाती है, तो इसे केवल तभी रद्द किया जा सकता है जब यह पाया जाता है कि यह अनुच्छेद 19 के किसी भी खंड (2) से (6) और इसी तरह से सुरक्षित नहीं है। कोई भी अधिनियम सिर्फ यह कहकर रद्द नहीं किया जा सकता है कि यह मनमाना या अनुचित है किसी अधिनियम को इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता



है कि न्यायालय उसे अनुचित मानता है। संसद और विधानमंडल, जो जनता के प्रतिनिधियों से बने हैं, उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे जनता की जरूरतों और उनके लिए क्या अच्छा है और क्या बुरा, इसके बारे में जानें और जागरूक रहें। न्यायालय उनकी बुद्धिमत्ता पर निर्णय नहीं दे सकता..." (जोर दिया गया)

18. इसके बाद टी.एन. राज्य एवं अन्य बनाम अनंथी अम्मल एवं अन्य, (1995) 1 एससीसी 519 में इस न्यायालय के निर्णय पर विचार करते हुए, मैकडॉवेल (सुप्रा) में तीन न्यायाधीशों की पीठ ने कंडिका 43 और 44 [पृष्ठ पर] में अवलोकन किया। रिपोर्ट की धारा 739) को इस प्रकार संशोधित किया गया है:

".....अब, अनंथी अम्मल मामले में दिए गए निर्णय पर आते हुए, हमारा विचार है कि यह कोई भिन्न प्रस्ताव नहीं रखता। यह मद्रास उच्च न्यायालय के उस निर्णय के विरुद्ध अपील थी जिसमें तमिलनाडु हरिजन कल्याण योजनाओं के लिए भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1978 को संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 300-ए का उल्लंघन बताते हुए रद्द कर दिया गया था। अधिनियम के प्रावधानों की समीक्षा करने पर, इस न्यायालय ने पाया कि इसमें एक ऐसी प्रक्रिया प्रदान की गई थी जो भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 द्वारा निर्धारित प्रक्रिया की तुलना में भूमि के मालिकों के लिए काफी अनुचित थी, क्योंकि अधिनियम की धारा 11 में दो हजार रुपये से अधिक होने पर किशतों में मुआवज़ा देने का प्रावधान था। अधिनियम की कई विशेषताओं, जिनमें ऊपर उल्लिखित विशेषता भी शामिल है, पर ध्यान देने के बाद, इस न्यायालय ने टिप्पणी की: (एससीसी पृष्ठ 526, कंडिका 7)

"7. जब किसी विधि पर अनुच्छेद 14 के अंतर्गत आपत्ति की जाती है, तो न्यायालय को यह तय करना होता है कि क्या वह विधि में इतना मनमाना या अनुचित है कि उसे रद्द कर दिया जाना चाहिए। अधिक से अधिक, किसी समान विषय पर किसी विधि का, जिसका प्राधिकार किसी अन्य स्रोत से प्राप्त होता है, उल्लेख किया जा सकता है, यदि उसके प्रावधानों को उचित माना गया हो या वे समय की कसौटी पर खरे उतरे हों, तो केवल यह दर्शाने के उद्देश्य से कि संदर्भ में क्या उचित कहा जा सकता है। हम इसी आधार पर उक्त अधिनियम के प्रावधानों की जाँच करने जा रहे हैं।"

44. श्री नरीमन ने इसी पैराग्राफ पर दृढ़ता से भरोसा किया है। हालाँकि, हमारी राय है कि उक्त पैराग्राफ की टिप्पणियों को निर्णय की समग्रता में समझा जाना चाहिए। कंडिका 7 में 'मनमाना' शब्द का प्रयोग



भेदभावपूर्ण होने के अर्थ में किया गया है, जैसा कि कंडिका को पूरी तरह से पढ़ने से पता चलता है। तमिलनाडु अधिनियम के प्रावधानों की तुलना भूमि अधिग्रहण अधिनियम के प्रावधानों से की गई और अंततः यह पाया गया कि धारा 11, जहाँ तक किशतों में क्षतिपूर्ति के भुगतान का प्रावधान करती है, अमान्य है। अमान्य करने का आधार स्पष्ट रूप से भेदभाव है। यह याद रखना चाहिए कि एक अधिनियम जो भेदभावपूर्ण है, उसे मनमाना कहा जा सकता है। इसी अर्थ में कंडिका 7 में 'मनमाना' शब्द का प्रयोग किया गया है।

19. उच्च न्यायालय ने इस बात का कोई कारण नहीं बताया है कि खंड (घ) में निहित प्रावधान मनमाना, अनुचित या अतार्किक क्यों था। इस निष्कर्ष का आधार निर्णय से स्पष्ट नहीं होता है। उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित नहीं किया गया है कि प्रावधान भेदभावपूर्ण था। जब राज्य विधानमंडल द्वारा अधिनियमित प्रावधान भेदभावपूर्ण नहीं पाया गया है, तो हमें डर है कि ऐसे अधिनियम को इस आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता था कि वह मनमाना या अतार्किक था।"

21. विधायिका द्वारा किया गया वर्गीकरण उचित है; यह केवल उन्हीं कर्मचारियों को संरक्षण प्रदान करता है जो संबंधित तिथि को सेवा में थे। ऐसा वर्गीकरण विधायी उद्देश्य से तर्कसंगत संबंध रखता है और मनमाना नहीं है।

22. तमिलनाडु राज्य बनाम केरल राज्य, (2014) 12 एससीसी 696 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर बल दिया कि विधि को चुनौती देने वाले व्यक्ति पर इसकी असंवैधानिकता को सिद्ध करने का दायित्व है, जिसे याचिकाकर्ता पूर्णतः निभाने में विफल रहा है।

23. उत्तरवादी –विश्वविद्यालय ने याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर विचार किया और कार्यकारी परिषद की दिनांक 02.09.2022 की बैठक के कार्यवृत्त के आधार पर दिनांक 15.09.2022 के तर्कसंगत आदेश द्वारा बहाली के दावे को खारिज कर दिया गया। यह निर्णय धारा 4(डी) के स्पष्ट प्रावधानों पर आधारित है और इसे हस्तक्षेप की आवश्यकता वाले मनमानेपन या अवैधता से ग्रस्त नहीं कहा जा सकता है।



24. उपर्युक्त के आधार पर, जब तक याचिकाकर्ता यह सिद्ध नहीं कर देता कि अधिनियम असंवैधानिक है, पक्षपातपूर्ण है, इस हद तक दमनकारी और मनमाना है कि इसे एक क्षण के लिए भी यथावत नहीं रखा जा सकता है, तब तक इस न्यायालय द्वारा कोई हस्तक्षेप उचित नहीं है।

25. प्रस्तुत तर्क साक्ष्यों और अधिनियम, 2009 की धारा 4(घ) में निहित प्रावधानों से, याचिकाकर्ता द्वारा ऐसा कुछ भी अभिलेख में नहीं लाया गया है जिससे यह सिद्ध हो सके कि उक्त प्रावधान असंवैधानिक या मनमाना है। तदनुसार, अधिनियम, 2009 की धारा 4(घ) को असंवैधानिक घोषित करने के लिए याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई अनुतोष स्वीकार नहीं की जा सकती है और अस्वीकृत मानी जाती है।

26. जहां तक याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई अन्य अनुतोष , जो परमादेश की प्रकृति की है, का संबंध है, याचिकाकर्ता इस न्यायालय द्वारा दायित्व अपील संख्या 159/2007 में की गई एक टिप्पणी के आधार पर सेवा में अपनी बहाली की प्रार्थना करता है, जिसमें यह दर्ज किया गया था कि "याचिकाकर्ता सुभाष सिंह की सरकारी नौकरी और उनकी नौकरी से संबंधित भविष्य की संभावनाओं पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।"

27. सबसे पहले, दायित्व कार्यवाही में की गई ऐसी टिप्पणियों के विधिक प्रभाव को स्पष्ट करना आवश्यक है। रोजगार पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़ने संबंधी मात्र टिप्पणी को याचिकाकर्ता को सेवा में बहाल करने के सकारात्मक निर्देश के रूप में नहीं समझा जा सकता है, विशेषकर तब जब उक्त टिप्पणी किए जाने से काफी पहले ही लागू नियमों के तहत सेवा समाप्ति को अंतिम रूप दे दिया गया था।

28. दायित्व अपील में इस न्यायालय की यह टिप्पणी कि याचिकाकर्ता के रोजगार पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा, उसे बहाली के लिए सकारात्मक निर्देश नहीं माना जा सकता। न्यायालय ने सेवा कानून के तहत कानूनी परिणामों पर विचार किए बिना केवल याचिकाकर्ता की शिकायत पर ध्यान दिया।

29. पुलिस उप महानिरीक्षक एवं अन्य बनाम एस. समुथिराम, (2013) 1 एससीसी 598 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की थी कि केवल दोषमुक्ति या दंड में संशोधन से कोई कर्मचारी स्वतः ही बहाली का हकदार नहीं हो जाता, जब तक कि बर्खास्तगी आदेश स्वयं अवैध न पाया जाए और निम्नलिखित टिप्पणी की गई:-



"26. जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं, सेवा नियम में बहाली के किसी प्रावधान के अभाव में, यदि किसी कर्मचारी को दाण्डिक न्यायालय द्वारा सम्मानपूर्वक दोषमुक्त कर दिया जाता है, तो उसे बहाली सहित किसी भी लाभ का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है। इसका कारण यह है कि आपराधिक न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने के लिए आवश्यक प्रमाण का मानक और अनुशासनात्मक कार्यवाही के माध्यम से की गई जाँच पूरी तरह से भिन्न होती है। एक आपराधिक मामले में, अभियुक्त का अपराध सिद्ध करने का दायित्व अभियोजन पक्ष पर होता है और यदि वह उचित संदेह से परे अपराध सिद्ध करने में विफल रहता है, तो अभियुक्त को निर्दोष मान लिया जाता है। यह स्थापित विधि है कि दाण्डिक न्यायालय में अपराध सिद्ध करने के लिए आवश्यक कठोर प्रमाण भार अनुशासनात्मक कार्यवाही में आवश्यक नहीं है और संभावनाओं की प्रबलता पर्याप्त है। ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहाँ किसी व्यक्ति को तकनीकी कारणों से दोषमुक्त कर दिया जाता है या अभियोजन पक्ष अन्य साक्षी को छोड़ देता है क्योंकि कुछ अन्य साक्षी मुकर गए थे आदि। इस मामले में अभियोजन पक्ष ने इस आधार पर कई महत्वपूर्ण साक्षी की परीक्षा करने के लिए कदम नहीं उठाए कि परिवादी और उसकी पत्नी मुकर गए थे। इसलिए, न्यायालय ने संदेह का लाभ देते हुए आरोपी को दोषमुक्त कर दिया। हम इस मामले में यह कहने को तैयार नहीं हैं कि उत्तरवादी को दाण्डिक न्यायालय ने दोषमुक्त कर दिया था और यदि ऐसा है भी, तो भी वह बहाली का दावा करने का हकदार नहीं है क्योंकि तमिलनाडु सेवा नियमों में ऐसा प्रावधान नहीं है।"

30. हाल ही में, प्रदीप कुमार बनर्जी बनाम भारतीय विमानपत्तन प्राधिकरण (एएआई), 2025 आईएनएससी 149 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि किसी दाण्डिक वाद में, विशेष रूप से संदेह के लाभ के आधार पर, दोषमुक्त होने से कोई कर्मचारी स्वतः ही बहाली का हकदार नहीं हो जाता। न्यायालय ने यह भी कहा कि अनुशासनात्मक कार्यवाही संभावनाओं की अधिकता पर आधारित होती है, जबकि दाण्डिक वाद में उचित संदेह से परे प्रमाण की आवश्यकता होती है और निम्नलिखित टिप्पणी की:-

"32. यह सर्वमान्य विधि है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही में, अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह प्रस्तावित दंड के विरुद्ध दोषी अधिकारी द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन में उठाए गए प्रत्येक आधार पर विचार करे और यदि वह जाँच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को स्वीकार



करता है, तो दंड लगाने के आदेश में विस्तृत कारण दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है। हमारा मत बोलोरम बोरदोलोई बनाम लखीमी गाओलिया बैंक, (2021) 3 एससीसी 806 में इस न्यायालय के निर्णय से पुष्ट होता है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था:-

"11.... इसके अतिरिक्त, यह सर्वविदित है कि यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी जाँच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को स्वीकार करता है और आदेश पारित करता है, तो दंड लगाने के आदेश में कोई विस्तृत कारण दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है। दंड जाँच रिपोर्ट में दर्ज निष्कर्षों के आधार पर लगाया जाता है, इसलिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा कोई और विस्तृत कारण दिए जाने की आवश्यकता नहीं है।"

33. अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए केवल इतना ही आवश्यक है कि वह अनुशासनात्मक कार्यवाही में साक्ष्यों की जाँच करे और इस तर्कसंगत निष्कर्ष पर पहुँचे कि जाँच के दौरान अभिलेख में प्रस्तुत सामग्री, संभाव्यता की प्रबलता के सिद्धांत पर, दोषी कर्मचारी के अपराध को सिद्ध करती है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी ने प्रतिवादी के मामले पर विचार करते समय ठीक यही किया।

34. हमारे सुविचारित मत में, खंडपीठ ने नियोक्ता द्वारा की गई अनुशासनात्मक जाँच के स्थान पर दायित्व वाद में अपेक्षित प्रमाण के मानक को प्रतिस्थापित करने में गंभीर त्रुटि की है। यह विधि का एक स्थापित सिद्धांत है कि दायित्व वाद में अभियोजन पक्ष पर मामले को उचित संदेह से परे सिद्ध करने का दायित्व होता है। हालाँकि, अनुशासनात्मक जाँच में, विभाग पर दायित्व सीमित होता है और उसे प्रायिकताओं की प्रबलता के सिद्धांत पर अपना मामला सिद्ध करना आवश्यक होता है। इस संबंध में, हम भारत संघ बनाम सरदार बहादुर, (1972) 4 एससीसी 618 में इस न्यायालय के निर्णय से लाभान्वित होते हैं, जिसमें इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया :

"15.... अनुशासनात्मक कार्यवाही कोई दायित्व वाद नहीं है। मानक प्रमाण संभाव्यता की प्रबलता का होना चाहिए, न कि उचित संदेह से परे प्रमाण का। यदि यह निष्कर्ष कि नंद कुमार एक ऐसा व्यक्ति था जिसका उत्तरवादी के साथ आधिकारिक व्यवहार होने की संभावना थी, वह ऐसा था जो एक उचित व्यक्ति मामले के सिद्ध तथ्यों से निकालेगा, तो उच्च न्यायालय उस पर आधारित निर्णय पर अपील



न्यायालय के रूप में कार्य नहीं कर सकता है। जहाँ कुछ सुसंगत सामग्री हैं जिन्हें प्राधिकारी ने स्वीकार कर लिया है और जो सामग्री इस निष्कर्ष का उचित रूप से समर्थन करती हैं कि अधिकारी दोषी है, वहाँ अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना उच्च न्यायालय का कार्य नहीं है।

31. वर्तमान मामले में, इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता की सेवाएँ 23.11.2007 को समाप्त कर दी गई थीं, जो कि केंद्रीय विश्वविद्यालय अधिनियम, 2009 के 15.01.2009 को लागू होने से बहुत पहले की बात है। इसलिए, याचिकाकर्ता 2009 के अधिनियम की धारा 4(घ) का सहारा नहीं ले सकता, क्योंकि उक्त प्रावधान केवल उन कर्मचारियों के अधिकारों की रक्षा करता है जो अधिनियम के लागू होने की तिथि तक निरंतर कार्यरत थे। धारा 4(घ) की भाषा स्पष्ट और अस्पष्ट है। यह केवल उन कर्मचारियों की रक्षा करती है जो अधिनियम के लागू होने की तिथि तक सेवा में थे। "जब तक उसका रोजगार समाप्त नहीं हो जाता" खंड स्पष्ट रूप से स्पष्ट करता है कि ऐसा संरक्षण उस व्यक्ति को उपलब्ध नहीं है जिसकी सेवाएँ उक्त तिथि से पहले ही समाप्त कर दी गई हों।

32. अभिलेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि चूँकि याचिकाकर्ता को अधिनियम, 2009 के अधिनियमन से पूर्व, 23.11.2007 को सेवा से हटा दिया गया था, इसलिए उक्त प्रावधान के आधार पर उसकी बहाली का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। अतः, आपराधिक कार्यवाही में की गई टिप्पणियों पर याचिकाकर्ता का भरोसा पूरी तरह से अनुचित और असंतुलित है।

33. इसके अलावा, अभिलेखों से पता चलता है कि केंद्रीय विश्वविद्यालय ने याचिकाकर्ता के अभ्यावेदनों पर विधिवत विचार किया है और 02.09.2022 को आयोजित कार्यकारी परिषद की बैठक (विषय संख्या 22) के कार्यवृत्त के आधार पर, दिनांक 15.09.2022 के ज्ञापन द्वारा एक विस्तृत आदेश पारित किया है। याचिकाकर्ता के मामले पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद, प्राधिकारियों ने सही निष्कर्ष निकाला है कि याचिकाकर्ता को 2009 के अधिनियम की धारा 4(डी) के तहत बहाल नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह इसके प्रारंभ होने की तिथि पर सेवा में नहीं था।

34. विश्वविद्यालय की कार्रवाई वैधानिक प्रावधानों और सुसंगत सेवा अभिलेखों पर आधारित, सुविचारित है। इस न्यायालय को कार्यकारी परिषद द्वारा दिए गए निर्णय में कोई मनमानी, अवैधता या विकृति नहीं दिखती है।



35. राकेश कोहली (सुप्रा) मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि न्यायिक पुनर्विलोकन में, न्यायालय का सरोकार निर्णय की शुद्धता से नहीं है, बल्कि निर्णय लेने की प्रक्रिया से है। चूँकि प्राधिकारियों ने उचित प्रक्रिया का पालन किया है, इसलिए इस न्यायालय को हस्तक्षेप का कोई औचित्य नहीं लगता है।

36. उपर्युक्त चर्चा के आलोक में, यह न्यायालय इस सुविचारित राय पर है कि:

(i) याचिकाकर्ता का बहाली का दावा विधिक तौर से आधारहीन है।

(ii) इस न्यायालय द्वारा दण्डिक अपील संख्या 159/2007 में की गई टिप्पणी वैधानिक प्रावधानों के विपरीत बहाली का अधिकार प्रदान नहीं कर सकती है।

(iii) विश्वविद्यालय प्राधिकारियों ने उचित विचार-विमर्श के बाद याचिकाकर्ता के दावे को अस्वीकार कर दिया है।

(iv) अधिनियम, 2009 की धारा 4(घ) में निहित प्रावधानों को मनमाना, असंवैधानिक या संविधान के अनुच्छेद 14 या 21 का उल्लंघन करने वाला नहीं कहा जा सकता है।

37. परिणामस्वरूप, रिट याचिका को आधारहीन मानते हुए खारिज किया जाता है। इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप का कोई प्रकरण नहीं बनता है। मांगे गये अनुतोष को अस्वीकार किया जाता है। इस पर कोई वाद व्यय देय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

सही/-
(रजनी दुबे)
न्यायाधीश

सही/-
(अमितेंद्र किशोर प्रसाद)
न्यायाधीश



(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

